वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 444
ISBN-978-93-84003-53-1

दिगम्बर जैन साधुओं की

आहार प्रत्याख्यान विधि

–रचयित्री –

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी,
दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत
परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी

वीर नि. संवत् 2541 कार्तिक शु. पूर्णिमा (6 नवम्बर 2014) आष्टान्हिक पर्व के समापन अवसर पर पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा घोषित 'श्री गौतम गणधर वर्ष (2014–2015) के अन्तर्गत प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org www.encyclopediaofjainism.com
E-mail : jambudweeptirth@gmail.com
Facebook : jaintirthjambudweep

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2541	मूल्य
1100 प्रतियाँ	कार्तिक शु. पूर्णिमा 6 नवम्बर 2014	16/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी
(दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी
(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: निर्देशक एवं सम्पादक:–

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

–: प्रबंध सम्पादक :–

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

–कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

बीसवीं सदी में मुनि परम्परा को जीवन्त करने वाले युगप्रवर्तक प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज हुए हैं। जिन्होंने जिनवाणी का जीर्णोद्धार एवं प्रकाशन कराकर जैन समाज पर महान उपकार किया है। आगम परम्परा से ओतप्रोत ऐसे आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज का 3 बार दर्शन करने वाली और उनसे अनुभव ज्ञान प्राप्त करने वाली चारित्रचन्द्रिका परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी हैं।

बीसवीं सदी में क्वाँरी कन्याओं के लिए दीक्षा का मार्ग प्रशस्त करने वाली, स्वाध्याय के द्वारा चारों अनुयोगों का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त करके जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने 400 ग्रंथों की रचना करके एक कीर्तिमान स्थापित किया है। मूलाचार, क्रियाकलाप, चारित्रसार, अनगार धर्मामृत आदि ग्रंथों का अनेकों बार स्वाध्याय करके साधु की चर्या, 28 मूलगुण, सामायिक, प्रतिक्रमण, अष्टमी क्रिया, पाक्षिक प्रतिक्रमण, नंदीश्वर क्रिया आदि का विधिपूर्वक पाठ एवं पालन करती हैं। आज जिन्हें संस्कृत का ज्ञान नहीं है उनकी सुविधा के लिए पूज्य माताजी ने सामायिक, प्रतिक्रमण आदि पाठों का हिन्दी पद्यानुवाद भी कर दिया है। जो कि मुनिचर्या पुस्तक में प्रकाशित है।

प्रस्तुत पुस्तक **'दिगम्बर जैन साधुओं की आहार प्रत्याख्यान विधि'** पुस्तक में पूज्य माताजी ने समस्त दिगम्बर जैन साधुओं के लिए प्राचीन आगम की पंक्तियों को दिखाकर सही विधि से प्रत्याख्यान ग्रहण करने और त्याग करने का निर्देश किया है। यह हम सभी का सौभाग्य है कि आज इस पंचमकाल में आगमज्ञान से अवगत कराने वाली, सरस्वती की प्रतिकृति पूज्य ज्ञानमती माताजी विराजमान हैं। प्रत्येक क्षेत्र में इनका चिन्तन, मनन एवं कार्य सराहनीय है। पूज्य माताजी दीर्घायु हों, स्वस्थ रहें, यही जिनेन्द्रदेव से मंगल प्रार्थना है।

प्रस्तावना

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

भगवान महावीर के शासनकाल में भगवान की दिव्यध्वनि से प्राप्त, श्री गौतम गणधर स्वामी के द्वारा कथित एवं आचार्यों द्वारा लिपिबद्ध किए गए ग्रंथों में मुनियों के आचार संबंधी अनेक ग्रंथ उपलब्ध हैं जिनमें मूलाचार, आचारसार, भगवती आराधना, अनगार धर्मामृत आदि ग्रंथ प्रमुख हैं। इन समस्त ग्रंथों में मुनियों के 28 मूलगुण, प्रतिक्रमण, सामायिक, स्वाध्याय, देववन्दना, गुरुवन्दना, प्रत्याख्यान विधि आदि का वर्णन है।

प्रस्तुत पुस्तक **'दिगम्बर जैन साधुओं की आहार प्रत्याख्यान विधि'** का संकलन जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, वर्तमान में सभी साधुओं में सबसे प्राचीन दीक्षित, चारित्र चन्द्रिका परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने इसलिए किया है, क्योंकि वर्तमान में कुछ साधु जब आहार चर्या के लिए उठते हैं तभी वे भगवान के समक्ष आहार प्रत्याख्यान का निष्ठापन कर देते हैं जो कि शास्त्रोक्त से गलत है। अतः इस बात को अच्छी तरह से समझने के लिए पूज्य माताजी ने आचारसार, अनगार धर्मामृत में लिखी आहार प्रत्याख्यान विधि को इस पुस्तक में दिया है जिसमें स्पष्ट लिखा है कि साधुओं को चौके में नवधाभक्ति के बाद जब आहार प्रारम्भ करना है उसके पहले प्रत्याख्यान निष्ठापन विधि करना है और जब आहार पूर्ण हो जाय तब वहीं चौके में प्रत्याख्यान प्रतिष्ठापन विधि करके अपने स्थान पर आकर पुनः गुरु के समक्ष सिद्ध, योगिभक्ति पढ़कर प्रत्याख्यान लेना है फिर आचार्यभक्ति पढ़ना है।

इस पुस्तक में साधुओं की 'आहार प्रत्याख्यान विधि' को पूज्य माताजी ने पूर्णरूपेण भक्तिपाठ सहित दिया है और साथ ही इसमें आहार शुद्धि के बारे में, 46 दोष के बारे में, आहार ग्रहण एवं आहार त्याग के कारणों का, चौदह मल दोष, 32 अन्तराय आदि का भी वर्णन किया है।

आशा है इस पुस्तक को पढ़कर सभी साधुगण आगमोक्त चर्या से अवगत होकर आहार प्रत्याख्यान विधि का यथोक्त पालन कर अपने सम्यग्दर्शन को शुद्ध व सुदृढ़ करेंगे। पूज्य माताजी की प्रतिक्षण यही मंगल भावना रहती है कि मैं किस तरह से सभी भव्य जीवों को आगम के ज्ञान से अवगत कराऊँ एवं सभी शास्त्रोक्त, प्राचीन विधि का पालन करें।

पूज्य माताजी की देव, शास्त्र, गुरु के प्रति अटूट भक्ति, आगम के प्रति पूर्ण श्रद्धा देखकर ऐसा लगता है कि पूर्व जन्मों में अवश्य पूज्य माताजी ने इन ग्रंथों का गहन अध्ययन किया था और अब पुनः स्वाध्याय के द्वारा इनका ज्ञान प्राप्त कर दूसरों को वितरित कर रही हैं।

पूज्य माताजी दीर्घायु हों, स्वस्थ रहें और इसी तरह से अपने ज्ञान से हम सभी को लाभान्वित करती रहें यही मंगल भावना है।

ज्ञानमत्यार्यिका माता, जीयात् वर्षशतं भुवि।
चन्दनामतिशिष्यायाः, पूर्यात् सर्वं मनोरथं।।

दो शब्द

–आर्यिका सुव्रतमती

स्वदोष–शान्त्यावहितात्मशांतिः शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम्।
भूयाद् भवक्लेश–भयोपशान्त्यै शांतिर्जिनो मे भगवान्शरण्यः।।

भगवान महावीर के शासनकाल में बीसवीं, इक्कीसवीं शताब्दी में जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, युगप्रवर्तिका, चारित्रचन्द्रिका, आर्यिका शिरोमणि, वर्तमानकालीन पिच्छीधारी सभी साधुओं में सबसे प्राचीन दीक्षित, परमपूज्य 105 गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने जिनधर्म, जिनागम की विशेष प्रभावना की है। प्रतिक्षण पूज्य माताजी की यह भावना रहती है कि किस तरह से मैं वर्तमान में सभी भव्य जीवों को आगम के ज्ञान से, पूर्वाचार्यों की वाणी से सिंचित करूँ।

जैसे जैनधर्म अनादि अनिधन है, णमोकार मंत्र अनादि अनिधन है उसी प्रकार मुनि परम्परा, चतुर्विध संघ की परम्परा भी अनादि अनिधन है। दिगम्बर जैन साधुओं की जो चर्या चतुर्थकाल में थी वहीं आज पंचमकाल में भी है। भगवान महावीर की दिव्यध्वनि से प्राप्त, श्री गौतम स्वामी के मुख्य से निकली वाणी आज ग्रंथों में लिपिबद्ध है, यह हम सभी का परम सौभाग्य है। पूज्य माताजी का पूरी जैनसमाज पर महान उपकार है जो कि आज वे सभी को आगम के ज्ञान से अवगत कराती हैं।

पूज्य माताजी की वाणी जिनवाणी है। लेखनी में सरस्वती का वास है। जिनागम का सार बताने वाली, ज्ञानामृत का वितरण करने वाली, षट्खण्डागम की 16 पुस्तकों पर 'सिद्धान्तचिन्तामणि' नाम की संस्कृत टीका लिखने वाली, राष्ट्रगौरव, युगनायिका, सिद्धान्तचक्रेश्वरी, वाग्देवी, डी. लिट् आदि अनेक उपाधियों से अलंकृत पूज्य माताजी इस युग के लिए वरदान हैं। इस पुस्तक की प्रूफ रीडिंग के माध्यम से मुझे जो स्वाध्याय का लाभ प्राप्त हुआ है, वह मेरे भव भ्रमण को दूर कर शीघ्र ही श्रुतज्ञान की प्राप्ति करावे, इन्हीं मंगल भावनाओं के साथ पूज्य माताजी के पावन चरणों में कोटि–कोटि नमन।

पूज्य माताजी दीर्घायु हों, स्वस्थ रहें, जिनेन्द्रदेव से यही मंगल प्रार्थना है—

है यही प्रार्थना जिनवर से, यह प्रभा सदा दिन दूनी हो।
भारत माता की गोदी, इन माँ से कभी न सूनी हो।।

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान– टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.

जन्मतिथि– आसोज सुदी 15 (शरदपूर्णिमा) वि. सं. 1991, (22 अक्टूबर सन् 1934)

जाति– अग्रवाल दि. जैन, **गोत्र–** गोयल, **नाम–** कु. मैना

माता-पिता– श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन

आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत– ई. सन् 1952, बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन

क्षुल्लिका दीक्षा– चैत्र कृ. 1, ई. सन् 1953 को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से। नाम-क्षुल्लिका वीरमती

आर्यिका दीक्षा– वैशाख कृ. 2, ई. सन् 1956 को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व– अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं लगभग 300 ग्रंथों की लेखिका।

डी.लिट्. की मानद उपाधि– सन् 1995 में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा एवं तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद द्वारा 8 अप्रैल 2012 को ''डी.लिट्.'' की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा– हस्तिनापुर में जंबूद्वीप, तेरहद्वीप, तीनलोक आदि रचनाओं के निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा-भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा, महावीर जी तीर्थ पर महावीर धाम में पंचबालयति मंदिर, शिर्डी में ज्ञानतीर्थ, सम्मेदशिखर में आचार्य श्री शांतिसागर धाम इत्यादि।

महोत्सव प्रेरणा– पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव, दिल्ली में कल्पद्रुम महामण्डल विधान का ऐतिहासिक आयोजन इत्यादि। विशेषरूप से 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की तत्कालीन राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।

शैक्षणिक प्रेरणा– 'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार, ऑनलाइन जैन इनसाइक्लोपीडिया आदि।

रथ प्रवर्तन प्रेरणा– जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982 से 1985), समवसरण श्रीविहार (1998 से 2002), महावीर ज्योति (2003-2004) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

विषयानुक्रमणिका

	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	आहारचर्या कब और कैसे ?	1
2.	नवधा भक्ति	1
3.	प्रत्याख्यान विसर्जन विधि	3
4.	लघु सिद्धभक्ति	3
5.	प्रत्याख्यान ग्रहण विधि	4
6.	गुरु के पास प्रत्याख्यान ग्रहण विधि	4
7.	लघु योगिभक्ति	5
8.	लघु आचार्य भक्ति	6
9.	गोचार प्रतिक्रमण कब और कैसे करें ?	8
10.	आचारसार ग्रंथ में आहार प्रत्याख्यान की विधि	10
11.	अनगार धर्मामृत ग्रंथ में आहार प्रत्याख्यान की विधि	12
12.	आहार शुद्धि	16
	1. छ्यिालिस दोष	16
	(क) उद्गम दोष के 16 भेद	16
	(ख) उत्पादन दोष के 16 भेद	17
	(ग) एषणा सम्बन्धी 10 दोष	18
	(घ) संयोजना आदि अन्य 4 दोष	19
	2. आहार ग्रहण के 6 कारण	19
	3. आहार त्याग के 6 कारण	20
	4. चौदह मल दोष	21
	5. आहार का काल	22
	6. आहार में पाँच प्रकार की वृत्ति	22
	7. बत्तीस अन्तराय	23

दिगम्बर जैन साधुओं की

आहार प्रत्याख्यान विधि

आहारचर्या कब और कैसे ?

साधु मंदिर में जाकर मध्यान्ह देववन्दना और गुरुवन्दना करके आहार को निकलते हैं ऐसा मूलाचार टीका, अनगार धर्मामृत आदि में विधान है फिर भी आजकल ९ बजे से लेकर ११ बजे तक के काल में आहार को निकलते हैं। संघ के नायक आचार्य आदि गुरु पहले निकलते हैं, उनके पीछे-पीछे क्रम से मुनि, आर्यिकायें, ऐलक, क्षुल्लक और क्षुल्लिकायें निकलते हैं अतः मंदिर में सभी संघ पहुँच जाता है तब मात्र गुरुवंदना करके भगवान् की लघु चैत्यभक्ति, लघु पंचगुरुभक्ति वंदना करके निकलते हैं। मुनिगण बायें हाथ में पिच्छी-कमंडलु लेकर दाहिने हाथ की मुद्रा को कंधे पर रखकर निकलते हैं। किसी संघ में मुनिगण दाहिने हाथ में पिच्छी और बायें हाथ में कमंडलु लेकर निकलते हैं पुनः दातार के द्वार पर पड़गाहन के बाद बायें हाथ में पिच्छी लेकर दाहिने हाथ की मुद्रा कंधे पर रख लेते हैं।

नवधा भक्ति

१. पड़गाहन करना २. उच्च आसन देना ३. पाद प्रक्षालन करना ४. अष्टद्रव्य से पूजन करना ५. पंचांग नमस्कार करना ६. मनशुद्धि ७. वचनशुद्धि ८. कायशुद्धि और ९. भोजनशुद्धि कहना ये नवधा भक्ति हैं।

जब श्रावक नवधाभक्ति करके "हे स्वामिन् ! आहार ग्रहण कीजिये।" ऐसी प्रार्थना करके शुद्ध गरम जल से साधु के हाथ धुला देते हैं तब साधु वहीं चौके में पूर्व दिन के ग्रहण किये हुए आहार के त्यागरूप प्रत्याख्यान या उपवास की निष्ठापन क्रिया करते हैं। जैसा कि अनगार धर्मामृत और आचारसार आदि ग्रंथों में लिखा है—

"हेयं—त्याज्यं साधुना निष्ठाप्यमित्यर्थः। किं तत्? प्रत्याख्यानादि—प्रत्याख्यान—मुपोषितं वा। क्व? अशनादौ-भोजनारंभे। कया? सिद्धभक्त्या। किं विशिष्टया? लघ्व्या।[१]

अर्थ—साधु चौके में भोजन प्रारंभ करते समय लघु सिद्धभक्ति के द्वारा पूर्व दिन के ग्रहण किये गये प्रत्याख्यान या उपवास का निष्ठापन करें—त्याग कर देवें।

कोई साधु मंदिर में या गुरु के पास ही सिद्धभक्ति पूर्वक प्रत्याख्यान की निष्ठापना करके आहार को जाते हैं। सो समझ में नहीं आया, ऐसा कहीं आगम में विधान नहीं है।

पुनः वहीं आहार के अनंतर मुखशुद्धि करके तत्क्षण ही प्रत्याख्यान ग्रहण कर लेवें। सो ही देखिये-

"आदेयं च लघ्व्या सिद्धभक्त्या प्रतिष्ठाप्यं साधुना। किं तत् ? प्रत्याख्यानादि। क्व? अंते प्रक्रमाद्-भोजनस्यैव प्रांते। कथं? आशु-शीघ्रं भोजनानंतरमेव। आचार्यासन्निधावेतद्विधेयं।"[२]

साधु शीघ्र ही—भोजन के अनंतर ही आचार्य की अनुपस्थिति में—वहीं चौके में ही लघु सिद्धभक्ति पढ़कर प्रत्याख्यान अथवा उपवास ग्रहण कर लेवें अर्थात् अगले दिन आहार ग्रहण के पूर्व तक चतुर्विध आहार का त्याग कर देवें या अगले दिन उपवास करना है तो उपवास ग्रहण कर लेवें।

१-२. अनगारधर्मामृत अ. ९, श्लोक ३७ की टीका, पृ. ६४९।

प्रत्याख्यान विसर्जन विधि

(नवधाभक्ति के बाद, आहार प्रारंभ करने के पहले की विधि)

नमोऽस्तु प्रत्याख्याननिष्ठापनक्रियायां.....सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(२५ उच्छ्वास में ९ बार जाप्य)

यदि पहले दिन का उपवास था तो–

नमोऽस्तु उपवासनिष्ठापनक्रियायां.....सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(२५ उच्छ्वास में ९ बार महामंत्र का जाप्य)

लघु सिद्धभक्ति

तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरितसिद्धे य।
णाणम्हि दंसणम्हि य सिद्धे सिरसा णमंसामि।।

इच्छामि भंत्ते! सिद्धभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं, अट्ठविहकम्मविप्प-मुक्काणं अट्ठगुणसंपण्णाणं, उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं, तवसिद्धाणं, णय-सिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अतीताणागदवट्टमाणकालत्तयसिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं, णिच्चकालं, अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

—पद्यानुवाद —

तप से सिद्ध नयों से सिद्ध, सुसंयमसिद्ध चरित सिद्धा।
ज्ञान सिद्ध दर्शन से सिद्ध, नमूँ सब सिद्धों को शिरसा।।२।।

—अंचलिका —

हे भगवन्! श्री सिद्धभक्ति का, कायोत्सर्ग किया उसका।
आलोचन करना चाहूँ जो, सम्यग् रत्नत्रय युक्ता।।१।।
अठविध कर्म रहित प्रभु ऊर्ध्व-लोक मस्तक पर संस्थित जो।
तप से सिद्ध नयों से सिद्ध, सुसंयमसिद्ध चरित सिध जो।।२।।
भूत भविष्यत वर्तमान, कालत्रय सिद्ध सभी सिद्धा।
नित्यकाल मैं अर्चूं पूजूँ, वंदूँ नमूँ भक्ति युक्ता।।३।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगति गमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।४।।

यहां 'प्रत्याख्यान निष्ठापन'' का अर्थ है कि जो चतुर्विध आहार का मैंने त्याग

किया था उस त्याग—प्रत्याख्यान को मैं अब निष्ठापित करता हूँ—समाप्त करता हूँ।

पुनःहाथ की अंजुलि जोड़कर आहार ग्रहण करें उसके बाद शीघ्र ही मुखशुद्धि करके वहीं पर निम्न विधि करें।

प्रत्याख्यान ग्रहण विधि

नमोऽस्तु प्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां.....सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(२५ उच्छ्वास में ९ बार महामंत्र का जाप्य)

यदि अगले दिन का उपवास लेना है तो–

नमोऽस्तु उपवासप्रतिष्ठापनक्रियायां.....सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(९ जाप्य)

पुनः ''**तवसिद्धे णयसिद्धे**'' इत्यादि लघु सिद्धभक्ति पढ़ें।

(पुनः ''अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्वसाधु पंचगुरु साक्षी से मेरा अगले दिन आहार ग्रहण करने तक चतुर्विध आहार का त्याग है।'' ऐसा संकल्प करें।)

''प्रत्याख्यान प्रतिष्ठापन'' का अर्थ है कि मैं अब चतुर्विध आहार के प्रत्याख्यान—त्याग को प्रतिष्ठापित—स्वीकार करता हूँ—ग्रहण करता हूँ।

पुनः श्रावक के घर से निकलकर साधु अपनी वसतिका में आकर आचार्य के समीप गवासन से बैठकर प्रत्याख्यान ग्रहण करें। सो ही कहा है—

''सूरौ—आचार्यसमीपे पुनर्ग्राह्यं प्रतिष्ठाप्यं साधुना। किं तत्? प्रत्याख्या-नादि। कया? लघ्व्या सिद्धभक्त्या.....लघु योगिभक्त्यधिकया तथा वंद्यः साधुना? स सूरिः। कया? सूरिभक्त्या। किं विशिष्टया? लघ्व्या[१]।''

पुनःआचार्य के पास में बैठकर साधु लघु सिद्धभक्ति और लघु योगिभक्ति पढ़कर प्रत्याख्यान या उपवास ग्रहण करें अनंतर लघु आचार्यभक्ति पढ़कर आचार्य की वंदना करें।

इसके प्रयोग की विधि निम्न प्रकार है—

गुरु के पास प्रत्याख्यान ग्रहण विधि

नमोऽस्तु प्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां.....सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(२५ उच्छ्वास में ९ जाप्य)

''**तवसिद्धे णयसिद्धे**'' इत्यादि लघु सिद्धभक्ति पढ़े।

नमोऽस्तु प्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां.....योगिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(२५ उच्छ्वास में ९ जाप्य)

---

१. अनगारधर्मामृत, नवमी अध्याय, पृ. ६४९।

लघु योगिभक्ति

प्रावृट्काले सविद्युत्प्रपतितसलिले वृक्षमूलाधिवासाः।
हेमंते रात्रिमध्ये प्रतिविगतभयाः काष्ठवत्त्यक्तदेहाः।।
ग्रीष्मे सूर्यांशुतप्ताः गिरिशिखरगताः स्थानकूटांतरस्थाः।
ते मे धर्मं प्रदद्युर्मुनिगणवृषभा मोक्षनिःश्रेणिभूता।।१।।

गिह्मे गिरिसिहरत्था वरिसायाले रुक्खमूलरयणीसु।
सिसिरे बाहिर-सयणा ते साहू वंदिमो णिच्चं।।२।।

गिरि - कंदर - दुर्गेषु ये वसंति दिगंबराः।
पाणिपात्रपुटाहारास्ते यांति परमां गतिम् ।।३।।

अंचलिका —**इच्छामि भंत्ते! योगिभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु आदावणरुक्खमूल-अब्भोवास-ठाण-मोण-वीरासणेक्कपास-कुक्कुडासण-चउत्थ-पक्खखवणादिजोगजुत्ताणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

लघु योगिभक्ति (पद्यानुवाद)

बिजली चमके अतिजल वर्षे, वर्षा में तरुतल बैठें।
शीतकाल रात्रि में निर्भय, काष्ठसदृश निर्मम तिष्ठें।।
गर्मी में रविकिरण तप्त गिरि, शिखरों पर निजध्यान धरें।
शिवपथ पथिक साधु पुंगव वे, मुझको धर्म प्रदान करें।।१।।

ग्रीष्मऋतू में पर्वत ऊपर, वर्षा में तरु के नीचे।
शीतकाल में बाहर सोते, उन मुनि को वंदूँ रुचि से।।२।।

पर्वत कंदर दुर्गों में जो, नग्न दिगम्बर तन रहते।
पाणिपात्रपुट से आहारी, वे मुनि परमगती लभते।।३।।

—अंचलिका —

हे भगवन्! इस योगभक्ति का, कायोत्सर्ग किया रुचि से।
उसकी आलोचन करने की, इच्छा करता हूँ मुद से।।
ढाई द्वीप अरु दो समुद्र की, पन्द्रह कर्मभूमियों में।
आतापन तरुमूल योग, अभ्रावकाश से ध्यान धरें।।१।।

मौन करें वीरासन कुक्कुट, आसन एकपार्श्व सोते।
बेला तेला पक्ष मास, उपवास आदि बहु तप तपते।।
ऐसे सर्व साधुगण की मैं, सदा काल अर्चना करूँ।
पूजूँ वंदूँ नमस्कार भी, करूँ सतत वंदना करूँ।।२।।

दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुणसंपद् होवे।।३।।

यदि अगले दिन का उपवास ग्रहण करना है तो ऐसा बोलना चाहिए-

नमोऽस्तु उपवासप्रतिष्ठापनक्रियायां....सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(९ जाप्य, तवसिद्धे इत्यादि)

नमोऽस्तु उपवासप्रतिष्ठापनक्रियायां.....योगिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(९ जाप्य, प्रावृट्काले इत्यादि)

इसके बाद आचार्यदेव अगले दिन के लिए प्रत्याख्यान या उपवास दे देते हैं-

(अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुसाक्षिपूर्वकं श्वः आहारग्रहणात् प्राक्पर्यंत चतुर्विधाहारत्यागं कारयामि तव-युष्माकं।)

अनंतर सभी साधु आचार्य वंदना करते हैं—

नमोऽस्तु आचार्यवंदनायां.....आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(२७ उच्छ्वास में ९ जाप्य)

लघु आचार्यभक्ति

श्रुतजलधिपारगेभ्यः स्वपरमतविभावनापटुमतिभ्यः।
सुचरिततपोनिधिभ्यो नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्यः।।१।

छत्तीसगुणसमग्गे पंचविहाचारकरणसंदरिसे।
सिस्साणुग्गहकुसले धम्माइरिये सदा वंदे।।२।।

गुरुभत्तिसंजमेण य तरंति संसारसायरं घोरं।
छिण्णंति अट्ठकम्मं, जम्मणमरणं ण पावेंति।।३।।

ये नित्यं व्रतमंत्रहोमनिरता, ध्यानाग्निहोत्राकुलाः।
षट्कर्माभिरतास्तपोधनधनाः साधुक्रियाः साधवः।।
शीलप्रावरणा गुणप्रहरणाश्चंद्रार्क-तेजोऽधिकाः।
मोक्षद्वारकपाटपाटनभटाः प्रीणंतु मां साधवः।।४।।

गुरवः पांतु नो नित्यं, ज्ञानदर्शननायकाः।
चारित्रार्णवगंभीरा, मोक्षमार्गोपदेशकाः।।५।।

अंचलिका —**इच्छामि भंत्ते! आइरियभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणं आइरियाणं, आयारादि-सुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

लघु आचार्यभक्ति (पद्यानुवाद)

श्रुतसमुद्रपारंगत स्वमत व, परमत ज्ञाता कुशलमती।
सच्चरित्र तपनिधियुत गुणगुरु, हे गुरु! तुमको करूँ नती।।१।।
छत्तिस गुण से पूर्ण पाँच, आचार क्रिया के धारी हो।
शिष्य अनुग्रह निपुण धर्म-आचार्य सदा वंदूँ तुमको।।२।।
गुरुभक्ति संयम से तिरते, भव्य भयंकर भव वारिधि।
अष्टकर्म छेदें वे फिर नहिं, पाते जन्म मरण व्याधी।।३।।
व्रत अरु मंत्र होम में तत्पर, ध्यान अग्नि में हवन करें।
तपोधनी षट् आवश्यकरत, साधू उत्तम क्रिया धरें।।
शीलवस्त्रधर गुण आयुधयुत, सूर्यचंद्र से तेज अधिक।
मोक्षद्वार उद्घाटन योद्धा, साधु हों प्रसन्न मुझ प्रति।।४।।
ज्ञानदर्श के नायक गुरुवर, नित मेरी रक्षा करिये।
चरितजलधिगंभीर मोक्षपथ, उपदेशक पथ में धरिये।।५।।

अंचलिका

हे भगवन् ! आचार्य भक्ति का, कायोत्सर्ग किया रुचि से।
उसके आलोचन करने की, इच्छा करता हूँ मुद से।।
सम्यग्ज्ञान दरश चारित युत, पंचाचार सहित आचार्य।
आचारांग आदि श्रुतज्ञानी, उपाध्याय उपदेशक वर्य।।
रत्नत्रय गुण पालन में रत, सर्वसाधु का मैं हर्षित।
अर्चन पूजन वंदन करता, नमस्कार करता हूँ नित।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुणसंपति होवे।।

गोचार प्रतिक्रमण कब और कैसे करें?

आचार्य देव की वंदना के बाद साधुवर्ग गोचार प्रतिक्रमण करें। जिनके घर में आहार हुआ है उनका नाम आदि बताकर आहार में जो कुछ अतिचार आदि लगे हों उनको कहना चाहिए। किन्हीं-किन्हीं संघ में आहार में जो कुछ ग्रहण किया है उन सब वस्तुओं को भी बतलाते हैं यह भी अच्छी परम्परा है। इससे शिष्यों के स्वास्थ्य के अनुकूल-प्रतिकूल वस्तु की जानकारी हो जाने से गुरु उसे अनुकूल वस्तु लेने व प्रतिकूल वस्तु न लेने आदि की शिक्षा भी देते हैं।

गोचार प्रतिक्रमण का अर्थ है-

''पडिक्कमामि भंते! अणेसणाए पाणभोयणाए.....''

इत्यादि दण्डक का पढ़ना किन्तु ''अनगारधर्मामृत'' में इन लघु प्रतिक्रमणों को 'दैवसिक प्रतिक्रमण' में ही अन्तर्भूत माना गया है अतः इस समय पृथक् इस दण्डक को पढ़ने की आवश्यकता नहीं है।

यथा-''तथा स प्रतिक्रमो निषिद्धिकेर्यालुंचाशदोषार्थश्चांतर्भवति। क्व? अपरे आह्निकादौ प्रतिक्रमे।''[१]

निषिद्धिका, ईर्यापथ, लोच, गोचार और स्वप्नदोष ये लघु प्रतिक्रमण दैवसिक-रात्रिक प्रतिक्रमण में अंतर्भूत हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि लोच, रात्रिक, दैवसिक, गोचार, निषेधिकागमन, ईर्यापथ और दोष ये सात लघु प्रतिक्रमण होते हैं। इनमें से ईर्यापथशुद्धि प्रतिक्रमण जो कि त्रिकाल देववंदना में आता है उसमें निषेधिकागमन प्रतिक्रमण गर्भित हो जाता है। दोष प्रतिक्रमण-निद्रा संबंधि प्रतिक्रमण रात्रिक में एवं लोच और गोचार प्रतिक्रमण दैवसिक में अंतर्भूत हो जाते हैं।

अनगार धर्मामृत में एक प्रश्न हुआ है कि साधु गुरु के परोक्ष में ही चौके में ही प्रत्याख्यान क्यों ले लेते हैं ? उसका समाधान दिया है कि ''दैवयोग से यदि कदाचित् गुरु के पास आते समय मार्ग में ही आयु समाप्त हो गई हो प्रत्याख्यान के बिना मृत्यु हो जाने से वह साधु विराधक — असमाधि से मरण करने वाला हो जावेगा अतः शीघ्र ही प्रत्याख्यान स्वयं ले लेना चाहिए फिर आकर गुरु के पास भी लेना चाहिए।[२]

विशेष ज्ञातव्य— आजकल किन्हीं संघों में साधु आहार के पहले ही गुरु के पास प्रत्याख्यान निष्ठापन की भक्ति पढ़ लेते हैं और गुरु के पास ही प्रत्याख्यान का त्याग करके आहार को जाते हैं। सो यह परम्परा कैसे चालू हुई कौन जाने? यह

१. अनगारधर्मामृत अ. ८, श्लोक ५८ की टीका। २. अनगारधर्मामृत अ. ९, श्लोक ३८।

आगमोक्त नहीं है। आचारसार में भी लिखा है कि "साधु दातार द्वारा पड़गाहन आदि नवधाभक्ति के पूर्ण हो जाने के बाद ही सिद्धभक्ति करके प्रत्याख्यान का निष्ठापन करे पुनः आहार ग्रहण करे।"[१]

क्रियाकलाप में पंडित पन्नालाल जी सोनी ने भी यही विधि लिखी है। यथा— "भोजन के पहले लघु सिद्धभक्ति पढ़कर प्रत्याख्यान अथवा उपवास का त्याग— निष्ठापन करें और भोजन के बाद शीघ्र ही लघु सिद्धभक्ति पढ़कर प्रत्याख्यान अथवा उपवास ग्रहण करें। यह तो आचार्य की असमक्षता में करें। आचार्य के समीप में लघु सिद्धभक्ति, लघु योगिभक्ति पढ़कर प्रत्याख्यान अथवा उपवास धारण करें। अनन्तर लघु आचार्यभक्ति पढ़कर आचार्य की वंदना करें।"[२]

१. आचारसार अ. ५, श्लोक ११६ से १२२। २. क्रियाकलाप, पृ. ४१-४२।

आचारसार ग्रंथ में आहार प्रत्याख्यान की विधि

प्रतिग्रहप्रणामाभ्यां स्थापितो योग्यदातृभिः।
तर्णकैलकवालादीननुल्लंघ्य विशेद्गृहम्[१]।।११६।।

जिस घर के योग्य दाता ने प्रतिग्रह और प्रणाम करके स्थापना किया है—ठहराया है उसके घर में भैंस के छोटे बच्चे वा किसी भेड़, बकरी के छोटे बच्चे को उल्लंघन न करते हुए प्रवेश करना चाहिए।।११६।।

प्रकाशजनसंचारवत्यशुच्यङ्गिवर्जते ।
विस्तीर्णे संवृते शस्ते सम्मते तत्र संवृतः।।११७।।
आत्मोचिताऽऽसनाऽऽसीनो दातृप्रक्षालितक्रमः।
ऊद्ध्वार्धः पार्श्वदिक्कोणनिक्षेपाद्यनिरीक्षणः।।११८।।
वर्णी पूर्णप्रतिज्ञोऽथ सिद्धभक्तिं विधाय तत्।
प्रत्याख्यानं विनिष्ठाप्य प्रेरितो भक्तदातृभिः।।११९।।
समांगुलचतुष्कांतरांघ्रिः स्थित्वा समुद्धते।
पात्रात्पिंडे करद्वन्द्वमानाभेर्धौतमुत्क्षिपेत् ।।१२०।।

जिस घर में प्रकाश हो, जिस घर में लोगों का जाना आना होता रहता हो अर्थात् जिसमें किसी प्रकार की रुकावट न हो, जिसमें कोई अपवित्र प्राणी न हो, जो विस्तीर्ण हो, ऊपर से ढका हो—उघड़ा हुआ न हो, जो प्रशंसनीय हो और जो सबको सम्मत वा मनोवाञ्छित हो ऐसे मकान में अपने शरीर वा इंद्रियों को समेट कर आहार के लिए जाना चाहिए। वहाँ जाकर अपने योग्य आसन पर बैठ जाना चाहिए। बैठ जाने पर आहार देने वाले दाता को उचित है कि वह उन मुनिराज के चरणकमलों का प्रक्षालन करे। उस समय मुनिराज को भी ऊपर की ओर, नीचे की ओर, अगल बगल वा दिशाओं के कोणों में रक्खे रहने वाले पदार्थों पर अपनी दृष्टि नहीं डालनी चाहिए अर्थात् किसी भी ओर देखना नहीं चाहिए। तदनंतर भक्ति करने वाले उस गृहस्थ दाता के द्वारा आहार ग्रहण करने की प्रार्थना करने पर जिनकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो चुकी है ऐसे उन मुनि को सिद्धभक्ति करनी चाहिए और फिर अपना प्रत्याख्यान वा पहले ग्रहण किया हुआ त्याग पूर्ण करना चाहिए। फिर उन मुनिराज को चार अंगुल के अंतर से दोनों पैरों को समान रखकर खड़ा होना चाहिए। तथा जब दाता अपने पात्र में से देने के लिए भोजन का ग्रास उठावे, तब उन मुनिराज को अपने धोए हुए दोनों हाथ नाभि से ऊपर रखते हुए क्षेपण करना चाहिए।।११७-१२०।।

१. आचारसार-अध्याय ५, पृ. १३४ से १३६ तक।

पुटं पाण्योरभित्वाऽन्यक्षिप्तं भुंजीत तं मतं।
विना विकारवेगार्त्तिमांद्याऽऽसक्तिस्वनादिभिः।।१२१।।

उन मुनिराज को आहार करते समय अपने दोनों हाथों का बंधन छोड़ना नहीं चाहिए तथा बिना किसी विकार के, बिना किसी प्रकार की शीघ्रता के, बिना किसी प्रकार की पीड़ा के, बिना किसी मंदता के, बिना किसी असमर्थता के और बिना किसी शब्द के वा बिना किसी ऐसे ही अन्य कारणों के शास्त्रों में लिखी हुई विधि के अनुसार हाथों में रक्खे हुए आहार को ग्रहण करना चाहिए।।१२१।।

यावदस्ति बलं स्थातुं मिलत्येतत्करद्वयम्।
तावद्भुंजे त्यजाम्यन्यथेति संधा यतेर्यतः।।१२२।।

मुनिराज जो खड़े होकर तथा हाथ मिलाकर आहार करते हैं उसका कारण यह है कि मुनिराज के ऐसी प्रतिज्ञा होती है कि "जब तक मुझमें खड़े होने की शक्ति है और जब तक मेरे से दोनों हाथ मिल सकते हैं तब तक ही मैं भोजन करूँगा। जब मुझमें खड़े होने की शक्ति नहीं रहेगी तथा हाथों में मिलने की शक्ति नहीं रहेगी तब मैं आहार का सर्वथा त्याग कर दूँगा, ऐसी मुनियों के प्रतिज्ञा होती है।।१२२।।

इन श्लोक कथित अर्थ से स्पष्ट है "वर्णी पूर्णप्रतिज्ञोऽथ" वाक्य में बहुत ही स्पष्ट है। कि वर्णी—मुनि नवधाभक्ति पूर्ण हो जाने पर पूर्व दिन के प्रत्याख्यान या उपवास का समापन लघु सिद्धभक्ति पढ़कर करें। अर्थात्-

अथ प्रत्याख्याननिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेणसकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

ऐसा मन में बोलकर ९ बार णमोकार मंत्र का जाप्य करके लघु सिद्धभक्ति पढ़कर खड़े होकर आहार ग्रहण करें। पुनः आहारानंतर तत्क्षण ही लघु सिद्धभक्ति पढ़कर प्रत्याख्यान ग्रहण कर लेवें।

अथ प्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां.....सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(९ जाप्य व पूर्ववत् लघु सिद्धभक्ति पढ़कर मन में नियम करें कि अगले दिन आहार होने तक मेरे चतुर्विध आहार का त्याग है पुनः आकर गुरु के पास दो भक्ति पढ़कर प्रत्याख्यान ग्रहण करें व गुरुवंदना करें। यही सर्व विधि अनगारधर्मामृत ग्रंथ में भी है।

अनगारधर्मामृत ग्रंथ में आहारप्रत्याख्यान की विधि

अप्रतिपन्नोपवासस्य भिक्षोर्मध्याह्नकृत्यमाह-

प्राणयात्राचिकीर्षायां प्रत्याख्यानमुपोषितम्।
न वा निष्ठाप्य विधिवद्भुक्त्वा भूयः प्रतिष्ठयेत्[1]।।३६।।

प्रतिष्ठयेत् प्रत्याख्यानमुपोषितं वा यथासामर्थ्यमात्मनि स्थापयेत्साधुः। कथम्? **भूयः** पुनः। किं कृत्त्वा ? **भुक्त्वा** भोजनं कृत्वा। किंवत् ? **विधिवत्** शास्त्रोक्तविधानेन। किं कृत्वा ? **निष्ठाप्य** पूर्वदिने प्रतिपन्नं क्षमयित्वा विधिवदेव। किं तत् ? **प्रत्याख्यानम्।** न केवलम्, उपोषितं न वा उपवासं वा। कस्यां सत्याम्? **प्राणयात्राचिकीर्षायां** भोजन-करणेच्छायां जातायाम्।।

उपवास न करने वाले साधु को इस मध्याह्न के अस्वाध्याय काल में क्या करना चाहिए सो बताते हैं[2]-

यदि भोजन करने की इच्छा हो तो पूर्व दिन जो प्रत्याख्यान अथवा उपवास ग्रहण किया था उसकी विधिपूर्वक क्षमापणा करनी चाहिए और उस निष्ठापन के अनंतर शास्त्रोक्त विधि के अनुसार भोजन करके अपनी शक्ति के अनुसार फिर प्रत्याख्यान अथवा उपवास की प्रतिष्ठापना करनी चाहिए।

प्रत्याख्यानादिनिष्ठापनप्रतिष्ठापनयोस्तत्प्रतिष्ठापनानन्तरमाचार्यवन्दनायाश्च प्रयोगविधिमाह-

हेयं लघ्व्या सिद्धभक्त्याशनादौ,
प्रत्याख्यानाद्याशु चादेयमन्ते।
सूरौ तादृग्योगिभक्त्यग्रया तद्,
ग्राह्यं वन्द्यः सूरिभक्त्या स लघ्व्या।।३७।।

हेयं त्याज्यं साधुना। निष्ठाप्यमित्यर्थः किं तत् ? **प्रत्याख्यानादि** प्रत्याख्यान-मुपोषितं वा। क्व ? **अशनादौ** भोजनारम्भे। कया ? **सिद्धभक्त्या।** किंविशिष्टया? **लघ्व्या।** न केवलम्, **आदेयं च** लघ्व्या सिद्धभक्त्या प्रतिष्ठाप्यं साधुना। किं तत् ? प्रत्याख्यानादि। क्व ? **अन्ते** प्रक्रमाद्भोजनस्यैव प्रान्ते। कथम् ? **आशु** शीघ्रं भोजनान्तरमेव। आचार्यासन्निधावेतद्विधेयं **सूरौ** आचार्यसमीपे पुनर्ग्राह्यं प्रतिष्ठाप्यं साधुना। किं **तत्** ? तत् प्रत्याख्यानादि। कया ? लघ्व्या सिद्धभक्त्या। किंविशिष्टया ? **तादृग्योगिभक्त्यग्रया** लघुयोगिभक्त्यधिकया। तादृग्लघ्वी योगिभक्तिस्तादृग्योगिभक्तिः। तयाग्रा अधिका

१. अनगार धर्मामृत मूल, नवमी अध्याय-पृ. ६४९-६५०। २. अनगारधर्मामृत, हिन्दी, नवमी अध्याय, पृ. ८७५ से ८७८ तक।

तादृग्योगिभक्त्यग्रा, तया। तथा **वन्द्यः** साधुना। कोसौ ? **स** सूरिः। कया ? **सूरिभक्त्या।** किं विशिष्टया ? लघ्व्या। उक्तं च–

सिद्धभक्त्योपवासश्च प्रत्याख्यानं च मुच्यते।
लघ्व्यैव भोजनस्यादौ भोजनान्ते च गृह्यते।।
सिद्धयोगिलघुभक्त्या प्रत्याख्यानादि गृह्यते।
लघ्व्या तु सूरिभक्त्यैव सूरिर्वन्द्योथ साधुना।।

प्रत्याख्यान या उपवास की निष्ठापना—समाप्ति और आगे के लिए प्रतिष्ठापन—प्रारम्भ करने की और प्रतिष्ठापन करने के अनंतर आचार्य परमेष्ठी की वंदना करनी चाहिए, अत एव उसके भी करने की विधि बताते हैं—

पहले दिन जो प्रत्याख्यान या उपवास ग्रहण किया था उसकी निष्ठापना साधुओं को भोजन के पहले लघु सिद्धभक्ति बोलकर करनी चाहिए। यहाँ "अशनादौ भोजनारंभे" वाक्य पर ध्यान देना चाहिये तथा भोजन क्रिया समाप्त होते ही तत्काल पुनः सिद्धभक्ति बोलकर नवीन प्रत्याख्यान या उपवास का प्रतिष्ठापन करना चाहिए। इस प्रकार से स्वयं प्रत्याख्यानादि का प्रतिष्ठापन आचार्य परमेष्ठी के अनिकट—वहीं करना चाहिए। पुनः आचार्य के पास में आकर साधुओं को भोजन के अनंतर पुनः लघु सिद्धभक्ति और योगिभक्ति बोलकर प्रत्याख्यानादि का प्रतिष्ठापन करना चाहिये और लघु आचार्यभक्ति बोलकर उनकी वंदना करनी चाहिए। जैसा कि कहा भी है कि—

भोजन की आदि में (नवधाभक्ति के बाद) उपवास या प्रत्याख्यान का त्याग और भोजन के अन्त में उसका ग्रहण लघु सिद्धभक्ति बोलकर ही करना चाहिए। पुनः साधुओं को गुरु के पास आकर लघु सिद्धभक्ति और लघु योगिभक्ति बोलकर प्रत्याख्यानादि का ग्रहण करना चाहिए और लघु आचार्य भक्ति बोलकर उनकी वंदना करनी चाहिए।

सद्यः प्रत्याख्यानाग्रहणे दोषमल्पकालमपि तद्ग्रहणे च गुणं दर्शयति–

प्रत्याख्यानं बिना दैवात् क्षीणायुः स्याद्विराधकः।
तदल्पकालमप्यल्पमप्यर्थपृथु चण्डवत्।।३८।।

स्यात्साधुः। किं विशिष्ट ? **विराधको** रत्नत्रयाराधको न भवेदित्यर्थः। किंविशिष्टः सन् ? **क्षीणायु**स्त्रुटितजीवितः। कस्मात् ? **दैवात्** प्राग्बद्धायुःकर्मवशात्। कथम् ? **विना**। किं तत् ? **प्रत्याख्यानम्।** तत्प्रत्याख्यानं **पुनरर्थपृथु** फलेन बहु स्यात्। किंविशिष्टमपि? **अल्पकालमपि।** अल्पः कालो यस्य तत्। तथा**ऽल्पमपि** स्तोकमपि। किं पुनश्चिरकालं प्रभूतं चेत्यपिशब्दार्थः। किंवत् ? **चण्डवत्।** चण्डनाम्नो मातङ्गस्य चर्मवरत्रानिर्मातुः क्षणं मांसमात्रनिवृत्तस्य यथा। उक्तं च–

चण्डोऽवन्तिषु मातङ्ग किल मांसनिवृत्तितः।
अप्यल्पकालभाविन्याः प्रपेदे यक्षमुख्यताम्।।

भोजन के अनंतर तत्काल ही (चौके में ही) प्रत्याख्यानादि ग्रहण करने के लिए जो कहा है उसका अभिप्राय स्पष्ट करने के लिए तत्काल प्रत्याख्यानादि ग्रहण न करने में दोष और थोड़ी देर के लिए उसके ग्रहण करने में महान् लाभ है ; इस बात को बताते हैं—

प्रत्याख्यानादि के ग्रहण किए बिना यदि कदाचित—पूर्वबद्ध आयुकर्म के वश से वर्तमान आयु क्षीण हो जाय तो वह साधु विराधक समझना चाहिए। अर्थात् कारणवश यदि उसकी अकस्मात् मृत्यु हो जाय तो वह साधु प्रत्याख्यान से रहित होने के कारण रत्नत्रय का आराधक नहीं हो सकता। किन्तु इसके विपरीत प्रत्याख्यान सहित तत्काल मरण होने पर थोड़ी देर के लिए और थोड़ा सा ही ग्रहण किया हुआ वह प्रत्याख्यान चण्ड नामक चाण्डाल की तरह महान् फल का देने वाला हो जाता है। जैसा कि कहा भी है—

उज्जयनी नगरी में एक चण्ड नामका मातङ्ग रहता था। एक दिन वह चाम की रस्सी बट रहा था, जबकि उसकी आयु पूर्ण होने में थोड़ा सा ही समय बाकी रहा था। यह बात एक ऋषिराज को मालुम हुई तब उन्होंने उसको मांस त्याग का व्रत दिया। उस मातङ्ग ने "ये मेरी चाम की रस्सी का बटना जब तक पूर्ण नहीं होता तब तक के लिए मेरे मांस का त्याग है" ऐसा व्रत लिया। भवितव्यतानुसार रस्सी बटना पूर्ण होने के पहले ही उसका मरण हो गया। अत एव उस व्रत के प्रसाद से वह मरकर यक्षेन्द्र हुआ।

प्रत्याख्यानादिग्रहणानन्तरकरणीयं गोचारप्रतिक्रमणादिविधिमाह–

प्रतिक्रम्याथ गोचारदोषं नाडीद्वयाधिके।
मध्यान्हे प्राण्हवद्वृत्ते स्वाध्यायं विधिवद्भजेत् ।।३९।।

अथ प्रत्याख्यानादिग्रहणानन्तरं साधुः **प्रतिक्रम्य** विशोध्य। कम् ? **गोचारदोषं** गोवद्भोजनस्यातिचारं **स्वाध्यायं विधिवद्भजेत्।** क्व सति ? **मध्यान्हे।** किंविशिष्टे **नाडीद्वयाधिके।** पुनः किंविशिष्टे ? **वृत्ते**ऽतिक्रान्ते सति। किंवत् ? **प्राण्हवत्** पूर्वाण्हे यथा।

प्रत्याख्यानादि ग्रहण करने के अनंतर गोचार प्रतिक्रमण—भोजनसम्बन्धी दोषों का संशोधन करना चाहिए। अतएव उसकी विधि बताते हैं–

प्रत्याख्यान अथवा स्वाध्याय को अपने में स्थापित करने के बाद साधुओं को गोचारसम्बन्धी दोषों—अतीचारों का प्रतिक्रमण करना चाहिए और उसके बाद पूर्वाह्न की तरह अपराह्ण काल में भी मध्यान्ह से दो घड़ी अधिक समय व्यतीत होने पर विधिपूर्वक स्वाध्याय का प्रारम्भ करना चाहिए।

आचारसार ग्रंथ में प्रत्याख्यान के प्रतिष्ठापन में भक्ति—

स्तः सिद्धयोगभक्ती द्वे प्रत्याख्यानेतदन्तगा।
सूरिभक्तिर्भवेत्सिद्धभक्तिर्निष्ठापनेऽस्य तु[१]।।७१।।

अन्वयार्थ—(प्रत्याख्याने) प्रत्याख्यान के प्रतिष्ठापन में (सिद्धयोगभक्ती) सिद्ध, योगभक्ति (द्वे) वह दो (स्तः) होती है और (तदन्तगा) उसके अन्त में (सूरिभक्तिः) आचार्यभक्ति (भवेत्) होती है (तु) और (अस्य) इस प्रत्याख्यान के (निष्ठापने) निष्ठापन में (सिद्धभक्तिः) सिद्धभक्ति होती है।

भावार्थ—प्रत्याख्यान प्रतिष्ठापन क्रिया में सिद्धभक्ति, योगभक्ति और आचार्यभक्ति करना चाहिए और इसके निष्ठापन में सिद्धभक्ति करना चाहिए।।७१।।

मूलाचार प्रदीप में प्रत्याख्यान प्रतिष्ठापन की विधि—

श्री सिद्धयोगभक्ती कृत्वा प्रत्याख्यानमूर्जितम्।
गृहीत्वाचार्यभक्तिश्च कर्तव्या पारणाहनि[२]।।२३।।
सिद्धभक्तिं विधायोच्चैः प्रत्याख्यानं विमोचयेत्।
मध्यान्हे संयमीदातृगेहेऽङ्गस्थितये चिदे।।२४।।

अर्थ—सिद्धभक्ति और योगभक्ति पढ़कर उत्तम प्रत्याख्यान ग्रहण करना चाहिए और पारणा के दिन आचार्यभक्ति पढ़नी चाहिए।।२३।। फिर संयमियों को आत्म कल्याणार्थ शरीर की स्थिति के लिए दाता के घर मध्यान्ह के समय सिद्धभक्ति पढ़कर प्रत्याख्यान का त्याग करना चाहिए।।२४।।

१. आचारसार पृ. १९८। २. मूलाचार प्रदीप पृ. १२३।

आहारशुद्धि

दिगम्बर साधु संयम की रक्षा हेतु शरीर की स्थिति के लिए दिन में एक बार छ्यालीस दोष—चौदह मल दोष और बत्तीस अंतरायों को टाल कर आगम के अनुकूल नवकोटि विशुद्ध आहार ग्रहण करते हैं। इसी को पिंडशुद्धि या आहारशुद्धि कहते हैं।

छ्यालीस दोष—

दिगम्बर मुनि के आहार के छ्यालीस दोष माने हैं। ये साधु इन दोषों से अपने को दूर रखते हैं।

उद्गम, उत्पादन, एषणा, संयोजना, अप्रमाण, इंगाल, धूम और कारण। मुख्यरूप से आहार संबंधी ये आठ दोष माने गये हैं।

१. दातार के निमित्त से जो आहार में दोष लगते हैं, वे उद्गम दोष कहलाते हैं।
२. साधु के निमित्त से आहार में होने वाले दोष उत्पादन नाम वाले हैं।
३. आहार संबंधी दोष एषणा दोष है।
४. संयोग से होने वाला दोष संयोजना है।
५. प्रमाण से अधिक आहार लेना अप्रमाण दोष है।
६. लंपटता से आहार लेना इंगाल दोष है।
७. निन्दा करके आहार लेना धूम दोष है।
८. विरुद्ध कारणों से आहार लेना कारण दोष है।

इनमें से उद्गम के १६, उत्पादन के १६, एषणा के १० तथा संयोजना, प्रमाण, इंगाल और धूम ये ४, ऐसे १६+१६+१०+४=४६ दोष हो जाते हैं।

इन सबसे अतिरिक्त एक अधःकर्म दोष है, जो महादोष कहलाता है। इसमें कूटना, पीसना, रसोई करना, पानी भरना और बुहारी देना ऐसे पंचसूना नाम के आरंभ से षट्कायिक जीवों की विराधना होने से यह दोष गृहस्थाश्रित है। इसके करने वाले साधु उस साधु पद में नहीं माने जाते हैं।

उद्गम दोष के १६ भेद—

१. औद्देशिक—साधु, पाखंडी आदि के निमित्त से बना हुआ आहार ग्रहण करना उद्देश्य दोष है।

२. अध्यधि—आहारार्थ साधुओं को आते देखकर पकते हुए चावल आदि में और अधिक मिला देना।

३. पूतिदोष—प्रासुक तथा अप्रासुक को मिश्र कर देना।

४. मिश्रदोष—असंयतों के साथ साधु को आहार देना।

५. स्थापित—अपने घर में या अन्यत्र कहीं स्थापित किया हुआ भोजन देना।

६. बलिदोष—यक्ष देवता आदि के लिए बने हुए में से अवशिष्ट को देना।

७. प्रावर्तित—काल की वृद्धि या हानि करके आहार देना।

८. प्राविष्करण—आहारार्थ साधु के आने पर खिड़की आदि खोलना या बर्तन आदि माँजना।

९. क्रीत—उसी समय वस्तु खरीदकर लाकर देना।

१०. प्रामृष्य—ऋण लेकर आहार बनाना।

११. परिवर्त—शालि आदि देकर बदले में अन्य धान्य लेकर आहार बनाना।

१२. अभिघट—पंक्तिबद्ध सात घर से अतिरिक्त अन्य स्थान से अन्नादि लाकर मुनि को देना।

१३. उद्भिन्न—भाजन के ढक्कन आदि को खोलकर अर्थात् सील, मुहर, चपड़ी आदि हटाकर वस्तु निकालकर देना।

१४. मालारोहण—निसैनी से चढ़कर वस्तु लाकर देना।

१५. आछेद्य—राजा आदि के भय से आहार देना।

१६. अनीशार्थ—अप्रधान दातारों से दिया हुआ आहार लेना।

ये सोलह दोष श्रावक के आश्रित होते हैं, ज्ञात होने पर मुनि ऐसा आहार नहीं लेते हैं।

उत्पादन दोष के १६ भेद—

१. धात्री दोष—धाय के समान बालकों को भूषित करना, खिलाना, पिलाना आदि करना जिससे दातार प्रसन्न होकर अच्छा आहार देवें, यह मुनि के लिए धात्री दोष है।

२. दूत दोष—दूत के समान किसी का समाचार अन्य ग्रामादि में पहुँचाकर आहार लेना।

३. निमित्त दोष—स्वर, व्यंजन आदि निमित्तज्ञान से श्रावकों को हानि, लाभ बताकर खुश करके आहार लेना।

४. आजीवकदोष—अपनी जाति, कुल या कला योग्यता आदि बताकर दातार को अपनी तरफ आकर्षित कर आहार लेना आजीवक दोष है।

५. वनीपक दोष—किसी ने पूछा कि पशु, पक्षी, दीन, ब्राह्मण आदि को भोजन देने से पुण्य है या नहीं ? हाँ पुण्य है, ऐसा दातार के अनुकूल वचन बोलकर यदि मुनि आहार लेवें तो वनीपक दोष है।

६. चिकित्सा दोष—औषधि आदि बताकर दातार को खुश कर आहार लेना।

७. क्रोध दोष—क्रोध करके आहार उत्पादन कराकर ग्रहण करना।

८. मान दोष—मान करके आहार उत्पादन करा कर लेना।

९. माया दोष—कुटिल भाव से आहार उत्पादन करा कर लेना।

१०. लोभ दोष—लोभाकांक्षा दिखाकर आहार करा कर लेना।

११. पूर्वसंस्तुति दोष—पहले दातार की प्रशंसा करके आहार उत्पादन करा कर लेना।

१२. पश्चात् स्तुतिदोष—आहार के बाद दातार की प्रशंसा करना।

१३. विद्या दोष—दातार को विद्या का प्रलोभन देकर आहार लेना।

१४. मंत्रदोष—मंत्र का माहात्म्य बताकर आहार ग्रहण करना। श्रावकों को शांति आदि के लिए मंत्र देना दोष नहीं है किन्तु आहार के स्वार्थ से बताकर उनसे इच्छित आहार ग्रहण करना सो दोष है।

१५. चूर्ण दोष—सुगंधित चूर्ण आदि के प्रयोग बताकर आहार लेना।

१६. मूलकर्मदोष—अवश को वश करने आदि के उपाय बताकर आहार लेना।

ये सभी दोष मुनि के आश्रित होते हैं इसलिए ये उत्पादन दोष कहलाते हैं। मुनि इन दोषों से अपने को अलग रखते हैं।

एषणा संबंधी १० दोष—

१. शंकित—यह आहार अधःकर्म से उत्पन्न हुआ है क्या ? अथवा यह भक्ष्य है या अभक्ष्य ? इत्यादि शंका करके आहार लेना।

२. म्रक्षित—घी, तेल आदि के चिकने हाथ से या चिकने चम्मच आदि से दिया हुआ आहार लेना।

३. निक्षिप्त—सचित्त पृथ्वी, जल आदि से संबंधित आहार लेना।

४. पिहित—प्रासुक या अप्रासुक ऐसे बड़े से ढक्कन आदि को हटा कर दिया हुआ आहार लेना।

५. संव्यवहरण—जल्दी से वस्त्र, पात्रादि खींचकर बिना विचारे या बिना सावधानी के दिया हुआ आहार लेना।

६. दायक—आहार के अयोग्य—मद्यपायी, नपुंसक, पिशाचग्रस्त अथवा सूतक-पातक आदि से सहित दातारों से आहार लेना।

७. उन्मिश्र—अप्रासुक वस्तु संमिश्रित आहार लेना।

८. अपरिणत—अग्न्यादि से अपरिपक्व आहार-पान आदि लेना।

९. लिप्त—पानी या गीले गेरु आदि से लिप्त ऐसे हाथों से दिया हुआ आहार लेना।

१०. छोटित—हाथ की अंजुलि से बहुत कुछ नीचे गिराते हुए आहार लेना।

ये दश दोष मुनियों के भोजन से संबंध रखते हैं। मुनि इन दोषों से अपने को सदैव बचाते रहते हैं।

संयोजना आदि अन्य ४ दोष—

१. संयोजना दोष—आहारादि के पदार्थों का मिश्रण कर देना, ठंढे जल आदि में उष्ण भात आदि मिला देना, अन्य भी प्रकृति विरुद्ध वस्तु का मिश्रण करना, संयोजना दोष है।

२. अप्रमाण दोष—उदर के दो भाग रोटी आदि से पूर्ण करना होता है, एक भाग रस, दूध, पानी आदि से भरना होता है और एक भाग खाली रखना होता है। यह आहार का प्रमाण है, इसका अतिक्रमण करके आहार लेना अप्रमाण दोष है।

३. अंगार दोष—जिह्वा इंद्रिय की लंपटता से भोजन ग्रहण करना।

४. धूमदोष—भोज्य वस्तु आदि की मन में निंदा करते हुए आहार ग्रहण करना।

इस प्रकार से उद्गम के १६ + उत्पादन के १६ + एषणा के १० + और संयोजना आदि ४ = सब मिलाकर ४६ दोष होते हैं।

जो पहले आठ दोषों में १ कारण दोष था वह इनसे अलग है। अब उसको बतलाते हैं—

"छह[१] कारणों से आहार ग्रहण करते हुए भी मुनि धर्म का पालन करते हैं और छह कारणों से ही आहार को छोड़ते हुए भी वे मुनि चारित्र का पालन करते हैं।"

आहार ग्रहण के ६ कारण—

(१) "क्षुधा[२] की वेदना मिटाने के लिए (२) अपनी और अन्य साधुओं की वैयावृत्ति करने के लिए (३) सामायिक आदि आवश्यक क्रियाओं के पालन के लिए (४) संयम पालन के लिए (५) अपने दश प्राणों की चिंता अर्थात् प्राणों की रक्षा के लिए और (६) दश धर्म आदि के चिंतन के लिए मुनि आहार ग्रहण करते हुए भी धर्म का पालन करते हैं।" अर्थात् यदि मैं भोजन नहीं करूँगा, तो क्षुधा वेदना धर्मध्यान को नष्ट कर देगी, स्व अथवा अन्य साधुओं की वैयावृत्ति करने की शक्ति नहीं रहेगी, सामायिकादि आवश्यक क्रियाएँ निर्विघ्नतया नहीं हो सकेंगी, षट्कायिक जीवों की

१. छहिं कारणेहिं असणं आराहंतो वि आयरदि धम्मं।
छहिं चेव कारणेहिं दु णिज्जुहवंतो वि आयरदि।।५९।। (मूलाचार, श्री कुंदकुंदकृत, पृ. २४८)

२. वेयण वेज्जावच्चे किरियाठाणे य संजमट्ठाए।
तध पाणधम्मचिंता कुज्जा एदेहिं आहारं।।३०।।

रक्षारूप संयम नहीं निभेगा, अपने इंद्रिय, बल, आयु प्राणों की रक्षा के बिना रत्नत्रय की सिद्धि नहीं होगी और आहार के बिना दश धर्मादि का पालन भी कैसे होगा ? यही सोचकर साधु आहार ग्रहण करते हैं।

आहार त्याग के ६ कारण—

(१) "[१]आकस्मिक व्याधि के आ जाने पर (२) भयंकर उपसर्ग के आ जाने पर (३) ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा हेतु (४) जीव दया हेतु (५) अनशन आदि तप करने के लिए और (६) संन्यास काल के उपस्थित होने पर मुनि आहार का त्याग कर देते हैं।"

दिगम्बर मुनि बल और आयु की वृद्धि के लिए, स्वाद के लिए, शरीर की पुष्टि या शरीर के तेज के लिए आहार ग्रहण नहीं करते हैं प्रत्युत ज्ञान की वृद्धि, संयम की वृद्धि और ध्यान की सिद्धि के लिए ही आहार ग्रहण करते हैं।

ये मुनि नवकोटि से विशुद्ध, ब्यालीस दोषों से रहित, संयोजना दोष से शून्य, प्रमाण सहित और विधिवत्-नवधा भक्ति से प्रदत्त, अंगार, धूम दोष से भी हीन, छह कारण संयुक्त, क्रम विशुद्ध और प्राणयात्रा या मोक्ष यात्रा के लिए भी साधन मात्र तथा चौदह मल दोषरहित ऐसा आहार ग्रहण करते हैं।

श्रावकों के द्वारा आहार बनाने में मन, वचन, काय की प्रवृत्ति नहीं करना और कृत, कारित या अनुमोदना भी नहीं करना, इस प्रकार से मन, वचन, काय को कृत, कारित, अनुमोदना से गुणित करने पर ३×३=९-नव भेद हो जाते हैं। नवकोटि से रहित आहार 'नवकोटिविशुद्ध' कहलाता है।

श्री कुंदकुंददेव ने इसी बात को स्पष्ट किया है। यथा—

"उद्गम, उत्पादन और एषणा के १६+१६+१०=४२ भेद होते हैं। संयोजना, अंगार, धूम दोषों से रहित तथा प्रमाण युक्त आहार होना चाहिए। उपर्युक्त छह कारणों से सहित हो, उत्क्रम से हीन हो तथा मोक्षयात्रा के लिए साधनमात्र है[२]।"

श्रावकों के श्रद्धा, भक्ति, तुष्टि, विज्ञान, अलुब्धता, क्षमा और सत्त्व—शक्ति ये सात गुण हैं तथा पड़गाहन करना, उच्चासन देना, चरण प्रक्षालन करना, पूजा करना, नमस्कार करना, मन शुद्धि, वचन शुद्धि और काय की शुद्धि कहना और आहार की शुद्धि कहना, यह नवधा भक्ति है। इन सप्तगुणसहित, नवधाभक्तिपूर्वक दिया गया

१. आदंके उवसग्गे तितिक्खणे बंभचेर गुत्तीओ।
पाणिदयातवहेऊ सरीरपरिहार वोच्छेदो।।६१।। (मूलाचार, पृ. २५०)

२. णवकोडी परिसुद्धं असणं वादालदोषपरिहीणं।
संजोजणाय हीणं पमाणसहियं विहिसुदिण्णं।।६३।। (मूलाचार पृ. ३७८)

आहार विधिवत् कहलाता है। ऐसे विधिवत् दिये गये आहार को वे मुनि ग्रहण करते हैं तथा चौदह मल दोष रहित आहार लेते हैं।

चौदह मल दोष—

आहार में नख, बाल, हड्डी, मांस, पीप, रक्त, चर्म, द्वीन्द्रिय आदि जीवों का कलेवर, कण[१], कुंड[२], बीज, कंद, मूल और फल।

इनमें से कोई महामल हैं, कोई अल्पमल हैं, कोई महादोष हैं और कोई अल्पदोष है। रुधिर, मांस, अस्थि, चर्म और पीप ये महादोष हैं, आहार में इनके दीखने पर आहार छोड़कर प्रायश्चित्त भी लिया जाता है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीवों का शरीर—मृतक लट, चिंवटी, मक्खी आदि तथा बाल के आहार में आ जाने पर आहार का त्याग कर दिया जाता है। नख के आ जाने पर आहार छोड़कर गुरु से किंचित् प्रायश्चित्त भी लेना होता है। कण, कुण्ड, बीज, कंद, फल और मूल के आहार में आ जाने पर यदि उनको निकालना शक्य है, तो निकालकर आहार कर सकते हैं अन्यथा आहार का त्याग करना होता है।

सिद्धभक्ति कर लेने के बाद यदि अपने शरीर में रक्त, पीप बहने लगे अथवा दातार के शरीर में बहने लगे, तो आहार छोड़ देना होता है। मांस के देखने पर भी उस दिन आहार का त्याग कर दिया जाता है।

द्रव्य से प्रासुक आहार भी यदि मुनि के लिए बनाया गया है, तो वह अशुद्ध है। इसलिए ज्ञात कर ऐसा आहार मुनि नहीं लेते हैं। "जैसे मत्स्य के लिए किये गये मादक जल से मत्स्य ही मदोन्मत्त होते हैं किन्तु मेंढक नहीं, वैसे ही पर के लिए बनाये हुए आहार में प्रवृत्त हुए मुनि उस दोष से आप लिप्त नहीं होते हैं। अर्थात् गृहस्थ अपना कर्त्तव्य समझकर शुद्ध भोजन बनाकर साधु को आहार देते हैं तब मुनि अपने रत्नत्रय की सिद्धि कर लेते हैं और श्रावक दान के फल स्वर्ग, मोक्ष को सिद्ध कर लेते हैं।

यदि आहार शुद्ध है फिर भी यदि साधु अपने लिए बना हुआ समझ कर उसे ग्रहण करता है, तो वह दोषी है और यदि कृत, कारित आदि दोष रहित आहार लेने के इच्छुक साधु को अधःकर्मयुक्त—सदोष भी आहार मिलता है, किन्तु उसे वह मुनि साधु बुद्धि से ग्रहण कर रहा है, तो वह साधु शुद्ध है[३]।"

---

१. गेहूँ आदि धान्यों के बाहर का छिलका। २. शालि आदि के अभ्यंतर का सूक्ष्म अवयव।

३. जह मच्छयाण पगदे मदणुदए मच्छया हि मज्जंति।
ण हि मंडूगा एवं परमकदे जदि विसुद्धो।।४८६।।
आधाकम्मपरिणदो फासुगदव्वे वि बंधओ भणिदो।
सुद्धं गवेसमाणो आधाकम्मे वि सो सुद्धो।।४८७।। (मूलाचार, पृ. ३७५)

अन्यत्र भी कहा है—यदि मुनि मन, वचन, काय से शुद्ध होकर तथा आलस को छोड़कर शुद्ध आहार को ढूंढ़ता है, तो फिर कहीं पर अधःकर्म होने पर भी वह साधु शुद्ध ही कहा जाता है। शुद्ध आहार को ढूँढने से अधःकर्म से उत्पन्न हुआ अन्न भी उस साधु के कर्मबंध करने वाला नहीं है[१]।"

आहार का काल—

"सूर्योदय से तीन घड़ी बाद और सूर्यास्त होने के तीन घड़ी पहले तक आहार[२] का समय है। "आहार काल में भी आहार का समय उत्कृष्ट एक मुहूर्त (४८ मिनट) मध्यम दो मुहूर्त और जघन्य तीन मुहूर्त प्रमाण तक है[३]।" मध्यान्ह काल में दो घड़ी बाकी रहने पर प्रयत्नपूर्वक स्वाध्याय समाप्त कर, देववंदना करके वे मुनि भिक्षा का समय जानकर पिच्छी, कमण्डलु लेकर शरीर की स्थिति हेतु आहारार्थ अपने आश्रम से निकलते हैं। मार्ग में संसार, शरीर, भोगों से विरक्ति का चिंतन करते हुए ईर्यापथ शुद्धि से धीरे-धीरे गमन करते हैं। वे किसी से बात न करते हुए मौनपूर्वक चलते हैं। श्रावक द्वारा पड़गाहन हो जाने पर वे खड़े हो जाते हैं तब श्रावक उन्हें अपने घर ले जाकर नवधाभक्ति करता है। अनंतर मुनि अपने पैरों में चार अंगुल का अंतर रखकर खड़े होकर अपने दोनों करपात्रों को छिद्र रहित बना लेते हैं। अनंतर सिद्धभक्ति करके क्षुधा वेदना को दूर करने के लिए वे प्रासुक आहार ग्रहण करते हैं।

आहार में पाँच प्रकार की वृत्ति—

"गोचार, अक्षम्रक्षण, उदराग्निप्रशमन, भ्रमणाहार, भ्रामरीवृत्ति और श्वभ्रपूरण, इन पाँच प्रकार की वृत्ति रखकर मुनि आहार ग्रहण करते हैं[४]।"

जैसे गाय को घास देने वाली स्त्री चाहे सुन्दर हो या असुन्दर, वह गाय स्त्री की सुन्दरता अथवा वस्त्राभूषणों को न देखकर मात्र अपनी घास पर दृष्टि रखती है। वैसे ही मुनि भी अन्न, रस, स्वादिष्ट व्यंजन आदि की इच्छा न रखते हुए दाता के द्वारा प्रदत्त प्रासुक आहार ग्रहण कर लेते हैं यह गौ के आचरणवत् गोचर या गोचरी वृत्ति कहलाती है।

जैसे कोई वैश्य रत्नों से भरी गाड़ी के पहियों की धुरी में थोड़ी सी चिकनाई

---

१. मुनिर्गवेषमाणो यः शुद्धाहारमतंद्रितः।
शुद्ध एव स योगाद्यैः सत्यधःकर्मणि क्वचित्।।३५।। (मूलाचार प्रदीप, पृ. ६६)

२. उदयत्थमणे काले णालीतियवज्जियम्हिमज्झम्हि।
एकम्हि दुअतिए वा मुहुत्तकालेयभत्तं तु।।३५।। (मूलाचार, पृ. ४५)

३. यह काल की मर्यादा सिद्धभक्ति से लेकर भोजन के अंत तक की है।

४. मूलाचार प्रदीप, पृ. ७०।

(ओंगन) लगाकर अपने इष्ट देश में ले जाता है। वैसे ही मुनिराज भी गुणरत्नों से भरी हुई शरीररूपी गाड़ी को ओंगन के समान थोड़ा सा आहार देकर आत्मा को मोक्षनगर तक पहुँचा देते हैं। इनको अक्षम्रक्षणवृत्ति कहते हैं।

जैसे कोई वैश्य रत्नादि से भरे भांडागार में अग्नि के लग जाने पर शीघ्र ही किसी भी जल से उसे बुझा देता है। वैसे ही साधु भी सम्यग्दर्शन आदि रत्नों की रक्षा हेतु उदर में बढ़ी हुई क्षुधारूपी अग्नि के प्रशमन हेतु सरस वा नीरस कैसा भी आहार ग्रहण कर लेते हैं। इसे उदराग्निप्रशमन वृत्ति कहते हैं।

जैसे भ्रमर अपनी नासिका द्वारा कमलगंध को ग्रहण करते समय कमल को किंचिन्मात्र भी बाधा नहीं पहुँचाता है। वैसे ही मुनिराज भी दाता के द्वारा दिये गये आहार को ग्रहण करते समय उन्हें किंचित् भी पीड़ित नहीं करते हैं। इसको भ्रामरीवृत्ति कहते हैं।

इस प्रकार से आहार ग्रहण करते हुए यदि बत्तीस अंतरायों में से कोई भी अन्तराय आ जाये, तो वे आहार छोड़ देते हैं। जो दाता और पात्र दानों के मध्य में विघ्न आता है, वह अन्तराय कहलाता है।

बत्तीस अन्तराय—

१. काक—आहार को जाते समय या आहार लेते समय यदि कौवा आदि वीट कर देवे, तो काक नाम का अन्तराय है।

२. अमेध्य—अपवित्र विष्ठा आदि से पैर लिप्त हो जावे।

३. छर्दि—वमन हो जावे।

४. रोधन—आहार के जाते समय कोई रोक देवे।

५. रक्तस्राव—अपने शरीर से या अन्य के शरीर से चार अंगुल पर्यंत रुधिर बहता हुआ दीखे।

६. अश्रुपात—दुःख से अपने या पर के अश्रु गिरने लगे।

७. जान्वधः परामर्श—यदि मुनि जंघा के नीचे के भाग का स्पर्श कर लें।

८. जानूपरिव्यतिक्रम—यदि मुनि जंघा के ऊपर का व्यतिक्रम कर लें अर्थात् जंघा से ऊँची सीढ़ी पर-इतनी ऊँची एक ही डंडा या सीढ़ी पर चढ़ें, तो जानूपरिव्यतिक्रम अंतराय है।

९. नाभ्योनिर्गमन—यदि नाभि से नीचे शिर करते आहारार्थ जाना पड़े।

१०. प्रत्याख्यात सेवन—जिस वस्तु का देव या गुरु के पास त्याग किया है, वह खाने में आ जाये।

११. जंतुवध—कोई जीव अपने सामने किसी जीव का वध कर देवे।

१२. काकादि पिंडहरण—कौवा आदि हाथ से ग्रास का अपहरण कर लें।

१३. ग्रासपतन—आहार करते समय मुनि के हाथ से ग्रास प्रमाण आहार गिर जावे।

१४. पाणौ जंतुवध—आहार करते समय कोई मच्छर, मक्खी आदि जन्तु हाथ में मर जावे।

१५. मांसादि दर्शन—मांस, मद्य या मरे हुए का कलेवर देख लेने से अन्तराय है।

१६. पादांतर जीव—यदि आहार लेते समय पैर के नीचे से पंचेन्द्रिय जीव चूहा आदि निकल जाये।

१७. देवाद्युपसर्ग—आहार लेते समय, देव, मनुष्य या तिर्यंच आदि उपसर्ग कर देवें।

१८. भाजनसंपात—दाता के हाथ से कोई बर्तन गिर जाये।

१९. उच्चार—यदि आहार के समय मल विसर्जित हो जावे।

२०. प्रस्त्रवण—यदि आहार के समय मूत्र विसर्जन हो जावे।

२१. अभोज्य गृह प्रवेश—यदि आहार के समय चांडालादि के घर में प्रवेश हो जावे।

२२. पतन—आहार करते समय मूर्धा आदि गिर जाने पर।

२३. उपवेशन—आहार करते समय बैठ जाने पर।

२४. सदंश—कुत्ते, बिल्ली आदि के काट लेने पर।

२५. भूमिस्पर्श—सिद्धभक्ति के अनन्तर हाथ से भूमि का स्पर्श हो जाने पर।

२६. निष्ठीवन—आहार करते समय कफ, थूक आदि निकलने पर।

२७. वस्तुग्रहण—आहार करते समय हाथ से कुछ वस्तु उठा लेने पर।

२८. उदर कृमिनिर्गमन—आहार करते समय उदर से कृमि आदि निकलने पर।

२९. अदत्तग्रहण—नहीं दी हुई किंचित् वस्तु ग्रहण कर लेने पर।

३०. प्रहार—अपने ऊपर या किसी के ऊपर शत्रु द्वारा शस्त्रादि का प्रहार होने पर।

३१. ग्रामदाह—ग्राम आदि में उसी समय आग लग जाने पर।

३२. पादेन किंचिद्ग्रहण—पाद से किंचित् भी वस्तु ग्रहण कर लेने पर।

इन उपर्युक्त कारणों से आहार छोड़ देने का नाम ही अन्तराय है। इसी प्रकार से इन बत्तीस के अतिरिक्त चांडालादि स्पर्श, कलह, इष्टमरण, साधर्मिक-संन्यासपतन, राज्य में किसी प्रधान का मरण आदि प्रसंगों से भी अन्तराय होता है। अन्तराय के अनन्तर साधु आहार छोड़कर मुख शुद्धि कर आ जाते हैं। मन में वे किंचित् भी खेद या विषाद को न करते हुए "लाभादलाभो वरं" लाभ की अपेक्षा अलाभ में अधिक कर्मनिर्जरा होती है, ऐसा चिंतन करते हुए, वैराग्य भावना को वृद्धिंगत करते रहते हैं।